© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

किरातार्जुनीयम् में गार्हस्थ्य चित्रण

दिनेश प्रताप मौर्य
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित) वि0वि0
प्रयागराज,उत्तर प्रदेश।

डॉ0 देवनारायण पाठक
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित) वि0वि0
प्रयागराज,उत्तर प्रदेश।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'गार्हस्थ्य' शब्द 'गृह' तथा 'गृहस्थ' शब्दों से प्रसूत माना जाता है। प्राचीन गृह्यसूत्रों, स्मृतियों, कोशादि में उक्त शब्दत्रय की विस्तृत एवं सारवती व्याख्याएँ दृष्टव्य हैं। 'गृह' शब्द सामान्यतया नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होता है। हलायुधकोश में इसकी व्युत्पत्ति 'गृह्' धातु में 'क' प्रत्यय लगाकर निर्दिष्ट की गई है।[1] कोशोपदिष्ट व्याख्या के अनुसार, 'जो जीवन–यापन में उपयोगी धान्यादि पदार्थों को ग्रहण करता है, वही 'गृह' है।'[2] ईंट इत्यादि से निर्मित निवास–स्थान को भी कोशकार ने 'गृह' की संज्ञा से अभिहित किया है।[3] वाचस्पत्यम् कोश के चतुर्थ भाग में 'गृह' शब्द की व्युत्पत्ति का निर्वचन प्राप्त होता है, जहाँ 'ग्रह्' धातु में कर्मणि अच् प्रत्ययपूर्वक 'गृह' शब्द की व्याख्या निर्दिष्ट है।[4] ध्यातव्य है कि 'गृह' शब्द निवास–स्थान मात्र का द्योतक न होकर 'भार्या' का भी पर्याय है। मनुस्मृति का भी यही उपदेश है–

''न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
तथा हि सहितः सर्वान् पुरुषार्थान् गृहमुच्यते।।''[5]

हलायुधकोश में भी इसी दृष्टि से व्याख्या निर्दिष्ट कि, ''(जो) धर्माचरणार्थ स्वीकार की जाए (वह) 'गृह' कहलाती है।[6] शब्दकल्पद्रुम में भी इसी भाव से अनुप्राणित निर्वचन प्राप्त होता है।[7] अमरकोश में वर्णित है कि, ''जो गृह (पत्नी) में रममाण हो, वह गृहस्थ है।''[8]

---

[1] ''गृह्+ गेहे कः इत्यनेन क प्रत्ययः।'' हलायुधकोश, पृ0सं0 280
[2] 'गृह्णाति धान्यादिकं जीवनार्थम् (इति गृहम्)। तत्रैव
[3] इष्टकादिरचितवासस्थानम् (इति गृहम्)। –तत्रैव
[4] ''ग्रह् ग्रहणे कर्मणि अच्।''–वाचस्पत्यम्, चतुर्थ भाग, पृ0सं0 2632
[5] मनुस्मृति
[6] 'गृह्यते स्वीक्रियते धर्माचरणाददसौ इति गृहम्।–हलायुधकोश, पृ0सं0 280
[7] 'गृह्यते स्वीक्रियते धर्माचरणाददसौ इतिगृह कलत्रम्।–शब्दकल्पद्रुम, द्वितीय भाग, पृ0सं0 349

कोशग्रन्थों में 'गृह' शब्द का उभयलिंगत्व स्वीकृत है। वाचस्पत्यम् का स्पष्ट निर्देश है कि एक गृह के सन्दर्भ में यह शब्द नपुंसकलिंग तथा अनेक गृहों के अर्थ में यह नित्य पुल्लिंग बहुवचनान्त होता है–'अर्द्धर्च्चादित्वादयमुभयलिंगः तत्र एकगृहे–नपुंसकलिंगे पुल्लिंगस्तु बहुवचनान्त एव।'[9] अमरकोशकार भी अनेक के अर्थ में 'गृह' शब्द के नित्य पुल्लिंगत्व का निर्देश करते हैं–

''निशान्तवस्त्यसदनं, भवनागारमन्दिरम्।
गृहाः पुंसि च भूम्न्येव, निकाय्यानिलयालयाः।।''[10]

शब्दकल्पद्रुमकार ने भी विकल्पपूर्वक 'गृह' शब्द को पुल्लिंग मानते हुए अमरकोशकार के उपर्युक्त मन्तव्य का ही समर्थन किया है।[11]

पुनश्च, 'गृहस्थ' शब्द का 'गृह' शब्द से अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में इस शब्द का पौनः पुन्येन उल्लेख दृष्टव्य है।[12] स्मृतिकार दक्ष 'गृहस्थ' शब्द की विशिष्ट व्याख्या उपदिष्ट करते हुए कहते हैं कि 'गृह' मात्र होने से कोई गृहस्थ नहीं होता प्रत्युत् गृहस्थ वह है, जो क्रियाओं से युक्त हो–'गृहस्थोऽपि क्रियायुक्तो न गृहेण गृहाश्रयी।'[13]

'गृह' एवं 'गृहस्थ' के पश्चात् 'गार्हस्थ्य' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्याख्येय शब्द है, जिसका भारवि विरचित किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के आलोक में चित्रण ही प्रकृत शोध–पत्र का लक्ष्य है। वाल्मीकि रामायण व महाभारत में भी 'गार्हस्थ्य' शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है।[14] वाचस्पत्यम् के अनुसार, 'गृहस्थ का भाव अथवा कर्म ही गार्हस्थ्य है।' पंचमहायज्ञादि गृहस्थ के कर्म के रूप में तत्रैव निर्दिष्ट हैं।[15] हलायुधकोश में तो समस्त आश्रमों को ही गार्हस्थ्यमूलक स्वीकार किया गया है–

''गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकाः।
चत्वारः आश्रमाः प्रोक्ताः सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः।।''[16]

अमरकोश में 'गृहस्थ' के लिए 'सत्त्री' शब्द का प्रयोग किया गया है।[17] इस दृष्टि से गृहस्थ द्वारा सत्रों अथवा यज्ञों का सम्पादन 'गार्हस्थ्य' के प्रभाव क्षेत्र में आता है। इस प्रकार यदि निष्कर्ष रूप

---

[8] गृहेषु दारेषु तिष्ठति अभिरमते इति गृहस्थः (गृह+स्था+सुपस्थिः इति कः)–अमरकोश–3/2/4

[9] वाचस्पत्यम्, चतुर्थ भाग, पृ0 सं0–2632

[10] अमरकोश–2/2/5

[11] अर्द्धर्च्चादित्वादेतायं शब्दौ विभाषया पुंसि च वर्तते। तत्र बहुवचनान्त एव शब्दकल्पद्रुम (द्वितीय भाग) पृ0सं0–349

[12] बौ0 धर्मसूत्र–2/11/14; मनुस्मृति–3/21/–22; बसिष्ठस्मृति–231–232; दक्ष स्मृति–2/41–42

[13] दक्षस्मृति–2/45

[14] चतुर्धामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तम्।'' वा0रा0, अयोध्याकाण्ड–106/22
''गार्हस्थ्यंचैव याज्याश्च सर्वा गृहह्याश्च देवताः।''–महा आश्व–6/90
''गार्हस्थ्यं धर्ममास्थाय ह्यसितो देवताः पुरा।''–महा0, शल्य0–50/1

[15] गृहस्थस्य भावः कर्म वा। गृहस्थकर्त्तव्ये पंचयज्ञादौ कर्मणि।–वाचस्पत्यम् (चतुर्थ भाग)

[16] हलायुधकोश, पृ0सं0–280

में कहा जाए तो 'गृहस्थ' से सम्बद्ध प्रत्येक कार्यक्षेत्र तथा गृहस्थाश्रम की विस्तृत परिधि 'गार्हस्थ्य' नाम से अभिहित होती है।

गार्हस्थ्य जीवन की परिधि में किरातार्जुनीयम् पर दृष्टिपात से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि भारवि की गृहस्थाश्रम सम्बन्धी क्या मान्यताएँ थीं। इस संदर्भ में यदि हम भारवीय काव्य का अनुशीलन करें तो यह ज्ञात होता है कि अपनी पूर्व परम्परा का अनुवर्तन करते हुए ही भारवि भी आश्रम–चतुष्टय के क्रमिक पालन के ही पक्षधर थे। इसके प्रमाणरूप में इन्द्र–अर्जुन संवाद को आधार बनाया जा सकता है। इन्द्र जब अर्जुन को शस्त्रास्त्र रहित होकर तप–साधना का उपदेश देते हैं, तब अर्जुन उनके इस उपदेश को अतार्किक एवं अनुचित बताते हुए कहते हैं कि मन्वादि स्मृतिकारों ने –'आश्रमादाश्रमं गच्छेत्' कहकर आश्रमों का क्रम से धारण करना धर्मानुकूल कहा है, फिर आप मुझ युवक को; जिसके गृहस्थ जीवन का समय चल रहा है, आप वानप्रस्थ धर्म धारण करने का उपदेश कैसे दे रहें हैं।[18] पारिवारिक व्यवस्था के क्रम में वे पत्नी के प्रति पति के कर्तव्यों के अन्तर्गत पत्नी की सर्वविध रक्षा को अपरिहार्य मानते हैं।[19] प्रत्येक पारिवारिक सदस्यों द्वारा गृहस्वामी के आदेश का अनिवार्यतः पालन किया जाना चाहिए ऐसा उनका मन्तव्य था।[20] पिता के अभाव में माता अथवा ज्येष्ठ भ्राता को ही परिवार के मुखिया का अधिकार प्रदान करते हुए उसकी आज्ञा को ही सर्वोपरि मानते हैं। अर्जुन ने स्वयं को पिता अथवा भ्राता का आज्ञापालक कहा है तथा इन्द्र से अपनी तपस्या की मूल उद्भावना के प्रसंग में शत्रुओं से प्रतिशोध लेने की भावना के साथ ही माता कुन्ती व ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को ही अपना नियंत्रक बताया है।[21]

यद्यपि महाकवि भारवि ने अपने काव्य के प्रतिपाद्य विषय के अन्तर्गत अर्जुन द्वारा इन्द्रकील पर्वत पर की गई तपोसाधना एवं किरातवेशधारी शिव के साथ हुए उनके युद्ध का ही विशद् वर्णन किया है तथापि गार्हस्थ्य के प्रति प्रगाढ़ आस्था के कारण उन्होंने किरातार्जुनीयम् के आधिकारिक तथा प्रासांगिक इतिवृत्त के अन्तर्गत क्रमशः पाण्डवों तथा दुर्योधन के गार्हस्थ्य का सांकेतिक निदर्शन भी किया है।

दुर्योधन की न्यायपूर्ण शासन–नीति, सुनियोजित राज–व्यवस्था, षड्वर्ग विजयपूर्वक मन्वनुशंसित प्रजा पालन पद्धति प्रभृति अन्यान्य राजकीय कर्तव्यों व उत्तरदायित्वों के कथन के अनन्तर महाकवि भारवि ने उसके गार्हस्थ्य–व्यवहार, भृत्य–मित्रादि व बन्धु–बान्धवों के प्रति उसकी दृष्टि, पुरुषार्थत्रय–पालन, सत्कारपूर्वक दानादि कर्तव्यों का भी वर्णन किया है। राजपद का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के उपर्यन्त दुर्योधन निरहंकार भाव से निष्कपट होकर सभी से सम्मानपूर्वक यथोचित व्यवहार करता था। भृत्यों से सुहृद्वत्, मित्रों से बन्धुजनों के

---

[17] अमरकोश–2/8/15
[18] किरात0–11/76
[19] किरात0–11/52
[20] किरात0–11/75
[21] किरात0–11/77

समान तथा बन्धुओं से राजा की भाँति व्यवहार करता हुआ[22] दुर्योधन गार्हस्थ्य जीवन के साफल्यार्थ त्रिगणों (अर्थ, धर्म व काम) का सम्यक् विभाग करके पक्षपातशून्य व अनासक्तभाव से आराधना करता है।[23] गृहस्थों के लिए विहित दान–दाक्षिण्यादि तथा अतिथि–सत्कार प्रभृति महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों का भी आलस्यरहित होकर निर्वहन करता है।[24] दुर्योधन द्वारा निरन्तर यज्ञ–हवनादि करने का कथन भी भारवि ने किया है।[25]

दुर्योधन के गार्हस्थ्य अनुशीलन के कथन के अनन्तर भारवि ने पाण्डवों के गार्हस्थ्य वर्णन के अवसर पर पति–पत्नी सम्बन्ध को एक सर्वथा नवीन दृष्टिकोण के साथ विद्रोही स्वरूप में उद्घाटित किया है, जो परम्परावादी महाकवियों के लिए अभूतपूर्व उदाहरण स्थापित करता है। वनेचर द्वारा वर्णित दुर्योधन की राज–व्यवस्था एवं उसकी लोकप्रियता को सुनकर द्वैतवन में वास करती द्रौपदी का अन्तस् अत्यन्त पीडित हो उठता है। युधिष्ठिर द्वारा तेरह वर्षों की प्रतीक्षा के संकल्प से वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्हें युद्धार्थ प्रोत्साहित करती हैं। इस अवसर पर महाकवि ने नारी–मन एवं उसके वाक्–चातुर्य तथा व्यंग्य–वाचन–नैपुण्य का अन्यन्त सजीव चित्रण किया है। यह द्रौपदी की वाक्पटुता ही थी कि वे अपना मन्तव्य स्पष्टतः कह भी देती हैं तथा युधिष्ठिर के क्रोधरूपी किसी भावी आशंका से स्वयं को सुरक्षित भी रखती हैं–

''भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।
तथापि वक्तुं व्यवसामयन्ति मां निरस्तनारीसमया दुराधयः।।''[26]

अर्थात् ''यद्यपि आप के समान नीतिनिष्णात् विद्वान को स्त्रीजन से कहा प्रबोधवचन अपमानजनक होता है तथापि स्त्रीजनोचित शालीनता को नष्ट करने वाली मनोव्यथाएँ मुझे कहने के लिए प्रेरित कर रही हैं।'' उक्त स्थल पर उद्भासित द्रौपदी की वाक्पटुता निःसंदेह प्रशंसनीय है।

पुनश्च, पति को किसी कार्य के प्रति प्रेरित करने के लिए उसके पूर्वजों के वर्णन को लक्ष्य बनाना नारी–सुलभ व्यवहार है, आदिकाव्य रामायण में भी इसके दृष्टांत अनेकशः दृष्टव्य हैं। नारी–सुलभ यह व्यवहार द्रौपदी के वचनों में भी परिलक्षित हुआ है, जब युधिष्ठिर को युद्धार्थ प्रोत्साहित करते हुए वे कहती हैं कि, ''इन्द्र तुल्य पराक्रम वाले अपने वंशज राजाओं द्वारा अनवरत् धारण की गई मही को आपने अपने हाथों से उसी प्रकार फेंक दिया जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी माला को फेंक देता है।''[27] अपने इस कथन द्वारा जहाँ

---

[22] किरात0–1/10
[23] किरात0–1/11
[24] किरात0–1/12
[25] किरात0–1/22
[26] किरात0–1/28
[27] किरात0–1/29

द्रौपदी युधिष्ठिर को उनके पूर्वजों के पराक्रम का स्मरण कराकर उन्हें प्रोत्साहित करती हैं, वहीं उनकी 13 वर्षों की प्रतीक्षा के निर्णय पर मीठा व्यंग्याघात किया है तथा अप्रत्यक्षरूपेण द्यूतक्रीडा का स्मरण कराकर उन्हें लज्जित भी किया है।[28]

पतियों द्वारा अपने मन्तव्य के औचित्य को सिद्ध कराने के लिए स्त्रियों के हृदय–तरकश में अनेक अमोघ वाक्–बाण होते हैं, जिनका यथावसर प्रयोग करने में वह सिद्धहस्त होती हैं। भारवि की द्रौपदी भी इसका अपवाद नहीं हैं। शत्रुकृत् अपमान का स्मरण कराना, अपने भूतकालीन वैभव तथा वर्तमानकालीन दैन्य स्थिति का तुलनात्मक प्रस्तुतीकरण करना, अत्यन्त ऋजुव्यवहार के कारण हुई त्रुटियों के लिए निःसंकोच कटुवचन कहना तथा उक्त घातक वाक्–बाणों के भी निष्फल हो जाने पर मान (हठ) नामक अमोघ अस्त्र का आश्रय लेना स्त्रियों की सहज प्रकृति है। इस दृष्टि से किरातार्जुनीयम् की द्रौपदी को नारी सुलभ व्यवहारों को उद्भासित करने वाला सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कहना कथमपि अनुचित न होगा। युधिष्ठिर को युद्धार्थ प्रेरित करती हुई द्रौपदी अत्यन्त तार्किक रूप से राज्यहरण तथा दुःशासन द्वारा अपने अपमान का स्मरण कराती हुई कहती है कि कोई भी अनुकूल सहाय वाला कुलाभिमानी व राजगुणों से युक्त कुलीन व्यक्ति अपनी वधू के समान लक्ष्मी को शत्रुओं द्वारा अपहृत नहीं कराता।[29] परन्तु अपने इस वागाघात से भी युधिष्ठिर को अनाहत व अविचलित देखकर[30] द्रौपदी धर्मराज के स्नेही अनुजों को लक्ष्य कर उनकी दुर्दशा का वर्णन कर युधिष्ठिर को उद्वेलित करने का यत्न करती हुई क्रमशः भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव द्वारा राजकाल में भुक्त सुखों तथा वनवासजन्य–दुःखों का उल्लेख करती है।[31] पूर्वजों के पराक्रम का स्मरण, भूत व वर्तमान स्थितियों की तुलना तथा शत्रुकृत अपमान के स्मरण रूपी वाक्–व्यूह में घेरने के पश्चात् द्रौपदी ने युधिष्ठिर पर प्रत्यक्ष वाक्प्रहार करते हुए उनके द्वारा भुक्त राजसी वैभव का स्मरण कराते हुए कहती हैं कि पूर्वकाल में जहाँ आप बहुमूल्य शय्या पर शयन करते हुए वन्दियों के स्तुतिगान व मंगलगीतों की ध्वनि से निद्रा को त्यागते थे, वहीं अब श्रृगालियों की अमंगल ध्वनि से निद्रा का परित्याग करते हैं।[32] राज्यकाल में ब्राह्मणों को उत्तमोत्तम भोजन ग्रहण कराने के उपर्यन्त शेष बचे अन्न से सौष्ठव एंव सौन्दर्य को प्राप्त आपका यह शरीर वनोपलब्ध फलों के सेवन से आज यश के साथ ही कृशता को प्राप्त कर रहा है।[33] इतना ही नहीं, राज्यकाल में आपके चरण जो मणिनिर्मित पीठिका पर निरन्तर आसीन तथा राजाओं की मस्तकस्थ मालाओं के पराग से

---

[28] किरात0–1/31
[29] किरात0–1/31
[30] तत्रैव–1/32
[31] तत्रैव–1/34–36
[32] किरात0–1/38
[33] तत्रैव–1/39

रंजित होते थे, सम्प्रति आपके वे ही चरण मृगों एवं ब्राह्मणों द्वारा काट ली गई शिखा के कारण तीक्ष्ण हुए कुशों के जंगलों में चलते हैं।[34]

पुनश्च, क्षुब्धहृदया द्रौपदी युधिष्ठिर के प्रति वाक् प्रहार से निवृत्त होकर अर्जुनाभिमुख हो उन्हें भी अपने वाक्–शरों का लक्ष्य बनाती हुई उनसे अपनी व पाण्डवों की दुरवस्था[35] तथा दुःशासनकृत केशापकर्षण रूपी अपने अपमान का स्मरण[36] कराती हुई तपस्या में सफल होकर लौटने पर ही आलिंगन सुख देने का हठ प्रकट करती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि किरातार्जुनीयम् महाकाव्य की द्रौपदी केवल नारी–सुलभ व्यवहार की प्रतिमूर्ति का आदर्शमात्र न होकर स्पष्टवादी[37] व्यवहारविद्[38], बुद्धिमान्[39], नीतिविद्[40] उत्साहवर्धिनी[41], उपदेशिका[42] पत्नी का सर्वोत्तम उदाहरण भी हैं।

पुनश्च, अतिथि–सत्कार गृहस्थों का शास्त्रविहित महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है। शास्त्रोपदिष्ट इस कर्म के धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा निर्वहन का किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। द्वैतवन में निवास करते हुए युधिष्ठिर द्वारा महर्षि व्यास को अतिथि रूपी पुण्य के समान प्राप्त कर उनके प्रति किए गए आतिथेयत्व का आलंकारिक वर्णन करते हुए भारवि– ''अवहितहृदयो विधाय सोऽर्हामृषिवदृषिप्रवरे गुरूपदिष्टाम्।

तदनुमतमलंचकार पश्चात्प्रशम इव श्रुतमासनं नरेन्द्रः।।''[43]

अर्थात् ''राजा युधिष्ठिर एकाग्रचित होकर मुनिश्रेष्ठ व्यास जी की ऋषिजनोचित शास्त्रोक्त पूजा करने के पश्चात् उनकी आज्ञा से आसन को उसी प्रकार अलंकृत करते हैं, जिस प्रकार शान्ति शास्त्रजन्य–ज्ञान को समलंकृत करती है।''–ऐसा कहते हैं। भारवि यह अभिव्यंजित करना चाहते हैं कि परिस्थितियाँ प्रतिकूल ही क्यों न हों, परन्तु गृहस्थ को कर्तव्यपालन से कदापि परांगमुख नहीं होना चाहिए।

---

[34] तत्रैव–1/40
[35] तत्रैव–3/44–46
[36] किरात0–3/47
[37] तत्रैव–1/41
[38] तत्रैव–1/28, 29, 30
[39] तत्रैव–1/33; 3/48
[40] तत्रैव–1/45
[41] तत्रैव–1/33, 34, 35; 3/47, 52
[42] तत्रैव–1/37, 41, 42, 43; 3/39–44, 50, 53
[43] किरात–2/58